International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 05, No. 02(III), April - June, 2023, pp. 190-196

लोककला में रचनात्मक व्यवहारः मांडना के संदर्भ में

सुरेश कुमार गुर्जर*

सार

आरम्भ से ही मानव स्तर पर विकसित चेतना में कतिपय अभूतपूर्व गुण सदैव ही व्यक्त हुए हैं। जिनमें कृर्त्तत्वगत में स्वातन्त्र्य (सृजनात्मकता) सर्वमुख है। सृजनात्मकता मानव का अपराजेय अस्त्र भी है। वस्तुतः सृजनात्मकता बीज का कारक भी है। जिसमें अदृश्य फल पीढ़ी दर पीढ़ी मिलता रहता है। पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परा में चला आ रहा मानव का प्रत्येक क्षण एक ऐतिहासिक दस्तावेज है। कार्लमार्क्स के अनुसार ''कलाकार अपनी रचनाओं में मानव क्षण (ह्यूमन मोमेण्ट) की रचना करता है।''[1] यह मानव क्षण निरन्तर स्थायी या शाश्वत होता है। वह चाहे दो हजार वर्ष पहले का कलाकार हो या आज का कलाकार या आगे आने वाले दो हजार वर्षों का – 'सब कुछ होगा उसमें।' मानव क्षण को निर्मित करके ही कला अपनी स्वायत्ता हासिल करती है। चूंकि जीवन पहले है जीवन की व्याख्या बाद में। इतिहसकार, साहित्यकार, समाजशास्त्री तथा कलाकार की दृष्टि अलग–अलग हो सकती है। परन्तु इसका प्रवलन गन्तव्य एक ही है। अतः मानव का प्रत्येक क्षण समय के प्रवाह के साथ आस्था, उल्लास और सौन्दर्यानन्द की अभिव्यक्ति के साथ जुड़ा है।

शब्दकोषः *लोककला, रचनात्मक व्यवहार, कलाकार, साहित्यकार, समाजशास्त्री।*

प्रस्तावना

राजस्थान की निरन्तर प्रवाहमान प्रक्रिया में ग्राम्य समाज की महिलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान है। ग्राम्य समाज में युग की जटिल सामाजिक क्रियाओं एवं सूक्ष्मता को व्यक्त करने की सहज शक्ति निहित होती है। इस दृष्टि से राजस्थान में अनेक गांवों की चितेरी महिलाएं 'रचनाक्रम' के माध्यम से बाह्य का आभ्यन्तीकरण और आभ्यन्तर का बाह्यीकरण की क्रिया को एक निरन्तर चक्र के रूप में देखती है। तथा स्वयं को वृहतर लोक से जोड़ती है। राजस्थान के अनेक गांवो की महिला कलाकारों की कृति उपलब्ध संसार के विभिन्न अवयवों से ही गढ़ी एवं मांडी जाती है। महिला कलाकारों ने जीव–जगत के बीच गूढ़ सम्बन्धों को नितान्त स्वाभाविक रूपों के द्वारा चित्रों में उद्घाटित किया है। न केवल राजस्थान की वर्न भारत की अनेक जाति की महिलाओं के द्वारा पोषित एवं संरक्षित ये चित्र (मांडने) निरन्तर विस्तार पाते जा रहे है। वर्ष पर्यन्त दीवारों एवं भूमि पर बने मांडनों से आज गांव भरा–भरा, स्वच्छ एवं सुन्दर दिखाई देता है। जिसमें विभिन्न विषयों की एकरूपता, सरलता एवं आवृत्ति बहुलता भी तकनीकी दृष्टि से अभिव्यक्ति में सौन्दर्य को बढ़ाती है। इन सम्बन्धों का रचनाकृति के रास्ते अस्तित्व में आना ही मानव क्षण का इतिहास है।

लोक व्याख्या के सन्दर्भ में सृजित कला तन्तुओं को विशेष रूप से कला के आधार पर जो विभिन्न माध्यमों के साथ समन्वित होकर अपनी क्रियान्विति करते हैं। **सर चार्ल्स होम**[2] ने इसके आधार को मुख्य दो रूपो में माना हैं :–

---

* शोधार्थी, भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

- स्वयंसंचालित (Automatic) शारीरिक अवययों द्वारा अभिव्यक्ति। सन्दर्भ–संगीत, नृत्य एवं काव्य।
- रूप रचना (shaping) बाह्य सामग्री द्वारा अभिव्यक्ति। सन्दर्भ–चित्र, मूर्ति एवं वास्तु।

जें .एल. जैरट[3] ने भी सृजित कला के दो आधारों को ही मुख्य माना है :–

- काल एवं समयाश्रित कलाएं (Temporal Arts) सन्दर्भ–संगीत, नृत्य एवं काव्य।
- स्थानाश्रित कलाएं (Spatial Arts) सन्दर्भ–चित्र, मूर्ति एवं वास्तु ।

चूंकि इस विभाजन का आधार मूलतः आवयविक क्रियाशीलता (Organic Activity) रही है। जिससे सृजित कलाओं की व्याख्या के आधार को स्पष्ट किया जा सके। **'हर्बर्ट रीड़'** के अनुसार मानव के सृजनात्मक विचार क्रमशः तीन आवरणों में प्रकट होते है :–

- गति (Movement) यह अनुभूति की सत्यता के सर्वाधिक निकट होती है। यह प्रथम आवरण है और अत्यधिक सहज एवं सरल भी है।
- रेखात्मक चिन्ह तथा प्रतीक (Linear signs & Symbols) यह द्वितीयक आवरण है, जो परिष्कृत प्रयत्न का परिणाम है ।
- मौखिक संकेत या भाषा संकेत (Verbal Signs or Language Symbols) भाव को व्यक्त करने का यह तीसरा आवरण है। सबसे कठिन एवं समय के साथ ही आवश्यक रूप में उपस्थित होता है।

अतः सृजित कलातन्तुओं के आधार में रचनात्मक व्यवहार सांमजस्य एवं समन्वित प्रयासों से निरन्तर पीढ़ी दर पीढ़ी गति पाते रहतें हैं। मौखिक कलाओं (Arts of Speech) एवं रूप कलाओं (Plastic Arts) के सामन्जस्य के विभिन्न आधार लोक में पीढ़ी दर पीढ़ी स्थान्तरित होते रहे हैं, जो सीमाओं से परे हैं। लोक मे प्रचलित विभिन्न आचरण आधारों को प्रारम्भ से ही किसी विशिष्ट रचनात्मक माध्यमों में अभिव्यक्त किया जाता रहा है, जिनमें लोक में प्रचलित अनेक दोहे एवं कहावतें आदि इस सन्दर्भ में प्रमुख है।

राजस्थान के प्रत्येक गांव के मानव क्षण के सम्बन्धों का इतिहास चितेरी महिलाओं के व्यक्तित्व का कृतित्व रूप में देखा जा सकता है, जिसमें अनेक जाति की महिलाओं द्वारा पोषित एवं संरक्षित ये चित्र (माण्डने) आज निरन्तर विस्तार पाते जा रहे हैं। वर्ष पर्यन्त दीवारों पर बने इन चित्रों से गांव आज भी भरे रहते हैं। विशेषकर ये चित्र (मांडना) भूमि तथा भित्ति पर अधिक बने हैं किन्तु कहीं – कहीं सोहरी और उठाऊ आधार पर भी बने हैं। यहाँ की महिलाओं द्वारा बनाये गये लोक चित्र (मांडणे) में विभिन्न रूपाकारों को देखा जा सकता है जिसे न केवल महिलाओं में भावनाओं को व्यक्त करने की सोच ही बढ़ी है वरन् रचनात्मक कार्य प्रतिभा सौन्दर्यात्मक प्रभाव क्षमता, आनन्दात्मक स्थिति में भी परिवर्तन हुआ तथा अनेक प्रकार के विक्षोभों से दूर होने की सकारात्मक स्थितियों में भी परिवर्तन हुआ। उपरोक्त सभी स्थितियाँ यहाँ की चितेरी महिलाओं के व्यक्तित्व के व्यावहारिक आधार की पुष्टि को उसके सृजनात्मक कृतित्व के माध्यम से अभिव्यक्त करती है।

राजस्थान में महिलाओं की सृजनात्मक प्रक्रिया प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से निरन्तर सक्रिय रही है। यहां की चितेरी महिलाओं ने मौखिक स्मृतियों को नितान्त स्वाभाविक एवं सरल रूपों की रचना के सहारे एक व्यवस्थित रूप दिया। ऐसी मौखिक स्मृतियों को समाज में संरक्षित करने की अपनी–अपनी अलग–अलग विधा एवं शैली है। ठीक 'मांडणा' भी एक ऐसी ही शैली है जिसे उसने अपने समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित किया है और करती आ रही है। महिलाओं के द्वारा सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की प्रासंगिकता आज के परिप्रेक्ष्य में और भी अधिक मूल्यवान हैं चूंकि निरन्तर तनावग्रस्त वातावरण में अपनी रचनात्मकता को जीवित रखे हुए हैं। मानव जाति के विकास में अनुकरण द्वारा ही सामाजिक, नैतिक और आचरण सम्बन्धी विकास होता है। संस्कृति का विकास, प्रसार और संरक्षण अनुकरण की प्रकृति द्वारा विशेष रूप से होता रहा है। **जेम्स** के अनुसार **'अनुकरण और आविष्कार रूपी दो पैरों पर मानव जाति सदा चलती रही है।'** चूंकि आरम्भ से दैनिक आवश्यकताओं एवं रंजन की पूर्ति में भी अनुकरण का महत्त्व रहा है। महिला चितेरियों ने भी पीढ़ी दर पीढ़ी अनुकरण की प्रवृत्ति के साथ रचनात्मक सामंजस्य को आधार दिया। वाचस्पति गैरोला ने भी कला की अजश्र एवं

अविच्छिन्न प्रवाहमान परम्परा को बनाये रखने में महिला चितेरियों की भूमिका महत्वपूर्ण मानी है। **'कलाओं के विकास एवं विस्तार से लेकर संरक्षण एवं संवर्धन तक का सारा श्रेय भी इन महिला चितेरियों को ही जाता है।'**[4] जिसने रचनात्मकता के आधार पर 'अवयवी विधि' से न केवल अपने व्यक्तित्व वरन् कृतित्व को समग्ररूप से समन्वित किया।

रचनात्मकता (Creativity) मानव की मूल प्रवृत्तियों में से एक मानी जाती है, वैसे ही मनोरंजन (Recreation) भी एक मानवीय मूल प्रकृति ही है। पाश्चात्य चिंतकों में जान डेवी, मर्टन तथा न्यूमियर आदि तथा भारतीय चिंतकों में मनाथनाथ रॉय तथा क्षितिमोहन सेन आदि ने भी मनोरंजन को मूल भावना प्रवृत्तियों में सम्मिलित किया है। विशेषकर मर्टन और न्यूमियर जैसे चिंतकों ने माना है कि ''मनोरंजन की क्रियाएँ विश्वजनित है। विश्व के अत्यन्त निर्जन स्थानों पर भी जहां लोग केवल अपने स्वतंत्र अस्तित्व के अतिरिक्त कोई भी सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखते वहां भी वे किसी न किसी रूप में अपना मनोरंजन कर ही लेते हैं।'[5]

अतः कलाओं में मूलतः आत्मरंजन और फलतः लोकरंजन की भूमिका में व्यक्ति, परिवार, समूह, समुदाय और समाज को जीवनक्षम बने रहने में व्यापक अर्थानुरूप मनोरंजन (Recreation) का दायित्व सर्वश्रेष्ठता से पूरा किया जाय तो यह भी एक श्रेष्ठ कला के योग ही हैं।

समाज के निर्माण में कलागत मनोरंजन की जीवन शक्तिदायी भूमिका, कला के प्रत्येक स्तर, धरातल और श्रेणी के सौपानों पर सर्वदा प्रतिपन्न की है। सामाजिक निर्माण की क्रमागत अवस्थाओं में प्रकृति के दर्शन और प्रभाव ग्रहण से उद्भूत अनुभूति की लयात्मक अभिव्यक्ति का रेखांकन हुआ। इस रेखांकन पद्धति 'मांडणा' ने उस परम्परा को समृद्ध किया, जो समाज के विकास के साथ–साथ जनरंजनी ऊर्जा के रूप में 'जीवित विरासत' की जगह पा सकी। इन सबका निरन्तर श्रेय महिलाओं को ही जाता है। सृजन की इसी प्रक्रिया को **'नाल–नाभिबद्ध'** कहा जाता है। जिसे प्रत्येक पर्वोत्सव पर चितेरी महिलाएं परम्परा की संवाहक रूप में निरन्तर 'नाल नाभिबद्ध' प्रक्रिया को दोहराती है। सृजनात्मकता की इसी प्रक्रिया का उल्लेख **श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर** ने भी मानव के व्यक्तित्व के साथ जोड़ते हुए किया है। उनका मानना था कि ''**कला–संगीत–साहित्य ऐसी प्रकृत्तियाँ है जो मनुष्य की ध्वंसात्मक वृत्तियों का विकास सृजन के द्वारा करती है। बुद्धिवृत्ति के बदले इसमें हृदयवृत्ति का स्थान है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने व्यक्तित्व को प्रकट करता है। हृदयवृत्ति का विकास कला विधाओं से होता है। इसलिए आत्मविकास में कला विधाएं सबसे प्रभावशाली तत्व है।''**[6]

सामाजिक ढाँचे में एवं पृष्ठभूमि के साथ–साथ मांडणों की परम्परा भी इनकी अपनी निराली ही है। आस्थाओं, स्वीकृतियों एवं मान्यताओं के दृढ़ एवं रूढ़ हो गये प्रतिबन्धों का नाम ही परम्परा है और पृष्ठभूमि, विगत के सांस्कृतिक आधार फलक, जिस पर परम्परा टिकती है। महिलाओं द्वारा बनाये गये इस सृजनात्मक व्यवहार पद्धति (मांडणा) का आधार उसका सतत् प्रवाह ही है जो उसे पृष्ठभूमि के साथ जोड़े रखा है। 'परम्परा' के अर्थ इतने व्यापक एवं बहुआयामी है कि प्रत्येक सामाजिक अनुशासन चाहे वह धर्म हो या दर्शन, अर्थ हो या राजनीति, इतिहास हो अथवा नृतत्त्व शास्त्र, कला हो या साहित्य, नृत्य हो या नाट्य सबसे उसके अर्थ भिन्न रूपों में ग्रहण किये गये हैं। परम्परा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दान में प्राप्त होने वाले सांस्कृतिक प्रतीक हैं, वे विश्वासों की टूटती बनती श्रृंखलाएं हैं तथा आस्थाओं के संगठित संकुचित होते आयाम हैं, जबकि पृष्ठभूमि का आधार फलक पर्व उत्सव रूप भी है, घटना भी इतिहास भी है और अनुष्ठान भी, वह पूर्व की पद्धति है, कार्यविधि आचरण और व्यवहारात्मक बाह्याचार भी है। सामाजिक वंशानुक्रम (Social Heredity) का ही दूसरा नाम परम्परा है जो समय की जीवनी शक्ति कही जाती है। चूंकि समाज की सर्वमान्य मान्यताएं, विचार, आचरण के नियम, धर्म, कानून, रूढ़िया, जन–रीतियां, प्रथाएं, कथाएं एवं किवदंतियों आदि सभी सामाजिक नियंत्रण के रूप में आते हैं। जिसकी पुष्टि **एम. गिन्सबर्ग** ने भी की है।[7] परमपरा से ही व्यवहार की विधि का बोध होता है। मांडणों के परिदृश्य में पृष्ठभूमि के बिना परम्परा को परिकल्पित नहीं किया जा सकता। अतएव दोनों प्रक्रिया घनिष्ठ संजुज्य अन्योन्याश्रित भी होती है। इस दृष्टि से चितेरी महिलाओं के मांडणों का आधार फलक अधिक विस्तृत है।

व्यक्ति चेतना और समाज चेतना का जो कुछ भी दृश्य है, जो कुछ भी विवेच्य है, वह सब परम्परा का ही अवदान है। वह एक ऐसी सामाजिक विधि है जिसमें सांस्कृतिक तत्व एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को विरासत रूप में अबाधगति से प्राप्त होते रहते हैं। कला में निहित चितेरी महिलाओं की सजग चेष्टा ही युग चेतना को प्रमाणित करती है तथा रचना प्रक्रिया को गति देवी है। चूंकि जीवन मूल्य युग चेतना से सम्बद्ध है। रचना मूल्यों के तारतम्यता को प्रतिपादित करती है। युग की प्रवृति, प्रकृति की पहचान, उसकी सहज सम्यक् व्याख्या, पकड़ एवं अभिव्यक्ति रचनाकार (चितेरी महिलाएं) की स्वतंत्र अनिवार्यता है। खुली आंखों से समाज में होने वाले परिवर्तनों को देखती, समझती एवं अनुभव के आधार तथा सहजता के साथ बाह्य प्रतिक्रियाओं का आंकलन करती है। तत्पश्चात् मानस पटल पर संचित प्रभावों को अभिव्यक्त करती है। ये सभी प्रवाह महिलाओं की रचनात्मकता को व्यावहारिक फलक पर लाने में सहायक होते हैं।

जैविक सामंजस्य की कड़ी में चितेरी महिलाओं की रचनात्मकता अपने आप में महत्वपूर्ण है, चूंकि प्रत्येक मानव का कोई न कोई योगदान सभ्यता के विकास का घटक है। लोक जीवन से तारतम्यता रखने के साथ अपनी मूल प्रवृत्तियों को रचनात्मक विस्तार एवं आधार देने में चितेरी महिलाएं अधिक सजग दिखाई देती हैं क्योंकि महिलाएं अधिक संवेदनशील होने के कारण अपने युग परिवेश के अनुसार जटिल सामाजिक क्रियाओं एवं सूक्ष्मता को व्यक्त करने की सहज शक्ति उनमें निहित है।

राजस्थान के अनेक गावों में विशेष रूप से सवाई माधोपुर में गुड़ासी में बनाये गये कलारूपों (मांडणों) में प्रकृति के अनेक आयाम देखे जा सकते हैं। जिसमें न केवल चितेरी महिलाओं ने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की पद्धति एवं तकनीक को ही प्रस्तुत किया है वरन् रचनात्कता से अपनी उल्लासपूर्ण अभिव्यक्ति को भी आधार दिया। यहां की महिलाओं की रचनात्मकता विविध आयामों में माण्डना, गोदना, कोठा–कोठी, बिटुरा, बुनना (बीजणी बुनना व खाट बुनना), थापे (पशुओं पर थापे व भित्ति पर थापे) ईण्डी, बन्दनवार, ढूमले–ढामले (कागज की लुगदी से बनी अनेक प्रकार की वस्तुएँ), रल्ली (विशेष प्रकार से, संयोजित व जोडी गई कपड़े की कतरनों की सुन्दर कलात्मक गूदड़ी आदि) इत्यादि प्रमुख है।[8] चितेरी महिलाओं द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी संरक्षित रचनात्मक शैली जिसे लोक में 'माण्डना' के नाम से जानते हैं जो नितांत स्वाभाविक एवं सरल आकारों की निर्मिति है। **संज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक अन्वीति का परिणाम एवं संजुज्य रूप का नाम ही 'मांडणा' है।**'[9]

अर्थात् मांडणा से अभिप्राय चित्र संरचना एवं बनाने की क्रिया से है। मांडणा एक सामाजिक स्मृति है जो हस्तांतरित होती रहती है। इस स्मृति में निरन्तर परिवर्तन भी होता रहता है, किन्तु इसका मूल अर्थ वही रहा है।

कला में डिजाइन (भांत) का विशेष महत्व है, जिसमें संतुलन व सामंजस्य के साथ एक विशेष शैली की निर्मिती होती है। **आर.आर. टामलिनसन** ने विभिन्न पैटर्न (भांत) में एकता एवं सामंजस्यता पर बल देते हुए कहा है कि **"पैटर्न (भांत) आत्म प्रकटन का ही एक स्वरूप है, जो मानव के लिए चित्र द्वारा प्रकटन (**Visual Expression**) के रूप में एक सम्पूर्ण भाषा का काम करती है।** ऐसी चित्र भाषा बोध का निर्माण करने में तथा रूपान्तर की पुष्टि में सहायक होती है।"[10] इस दृष्टि से लोक कलाओं में अनेक प्रकार की भांते (Pattern) देखने को मिलती है जिसमें 'मांडणा' प्रमुख है। मांडणों में आडी–तिरछी रेखाओं के नर्तन से एक विशेष प्रकार की भांत स्पष्ट देखने को मिलती है, जो नये–नये आकारों का निर्माण कर एक उद्देश्य होती है। आकारों के संदर्भ में रोजर फ्राई ने दृष्टि के विकास में नवीन प्रकारों के आकारों की निर्मिती को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार **"आकारों की नवीन पुनरावृत्ति एवं अनेक प्रकारों से मानव की दृष्टि का विकास एवं आत्मबल भी मिलता है।"[11]**

'मांडणों के ज्यामिति आकारों में अनेक परिवर्तन भी होते रहते हैं। चूंकि प्रकृति के हर क्षण के बदलाव है तो दृष्टि में क्यों नही? प्रकृति के हर पल में नवीन रूप का भण्डार भरा पड़ा है। आवश्यकता तो इस बात की है कि उसे आत्मबोध कैसे करें? कैसे देखें? इसी की सुन्दर अभिव्यक्ति इन महिला चितेरियों ने सरसता के साथ अभिव्यक्त की है। देखने मात्र से ही प्रकृति की इस विपुल सम्पदा का द्वार खुलता जाता है और समरसता व सरलता बढ़ती जाती है। **"देखना तभी पूर्ण होता है जब आँख से भी देखे व मन से भी देखे। मन से देखे तो मानवीय भाव, आंख से देखे तो प्रकृति भाव तथा दोनों को मिला कर के देखें तो सृष्टि की परिपूर्णता अभिव्यक्त होती है।"[12]**

विशेषतौर पर फलौदी, टोंक एवं सवाई माधोपुर के कुस्ताला एवं लहसोड़ा गांव में चितेरी महिलाओं की कलाओं (भित्तिचित्र, भूमि चित्र व अंगचित्र इत्यादि) का फलक सृष्टि की परिपूर्णता के साथ इतना विस्तृत है कि लगभग मानवीय जीवन के सारे प्रसंग उसमें समाहित है। इसी कारण विशेषकर मांडणे आज भी गत्यात्मकता एवं सजीवता लिये हुए हैं। एकरूपता, सरलता, सरसता एवं आकृति बहुलता के कारण ये मांडणे आकर्षक भी हैं। जिसमें निरन्तर काल गाथा को अभिव्यक्त करते हुए व्यक्ति चेतना से उठकर समूह चेतना की विवेच्य परम्परा दिखाई देती है। मांडणों में विविध रूपों एवं नाम से सम्बोधित आकारों के अर्थ अपने परिवेश के अनुसार विस्तार पाते जाते है। परिवेश में सम्बोधित मांडणे विभिन्न जातिगत आधार पर अलग–अलग देखने को मिलते हैं तो कहीं एकरूपता लिये हुए भी। लहसोड़ा में पगल्या, हीड़, श्रवण, कलसा, सूरज–चाँद, साठ्या (स्वास्तिक), कमल, शंख, मछली, नारियल, कुंकुम–बिन्दी, विभिन्न प्रकार के थापे, अनेक प्रकार के पशु–पक्षी, फूल–पत्ती एवं बेलबूंटे, विभिन्न प्रकार के पकवान, चौक–आंगणा, यांत्रिक वाहन तथा विभिन्न कार्यरत मानवाकृतियाँ आदि अनेक विषय रूपों को चित्रित किया गया है।

विभिन्न विषयों को अभिव्यक्ति करने के लिए मांडणों की विशेष कार्यविधि एवं प्रक्रिया को दोहराते हुए रचना की जाती है।[13] जिसमें प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों की सरलीकृत व्याख्या चित्रित की जाती है। जीव–जन्तुओं में घोड़ा, हाथी, ऊँट, शेर बन्दर, बिलाव–बिल्ली, तीतर–तीतरी, कबुतर, चिड़िया (चिड़कली), तोता (सुआ), कौआ, मोर–मोरनी (विभिन्न भांते), टीटोड़ी, सांप, नेवला, मोमाखी (मधुमख्खी), कंछला, कातरा, भूंडिया, बिच्छू, कनखजुरा व मछली आदि को चित्रित किया गया है। फूल–पत्ती एवं बेलबूटों में कमल, पान की बेल, नागर बेल, हरड़े की बेल फूल–झड़ी की बेल, घूघरी की बेल, कतर्या पान, तोरुयूं के फूल, बाजरे व ज्वार का सीठा, कैरी, खजूर, जुवार, आदि को अपनी रचनात्मकता में आधार दिया है।

विभिन्न प्रकार के थापों में देवी–देवताओं के स्मृतिरूप में तथा पशुओं के थापों में बेलबूटों व हाथ के थापे भी प्रयुक्त किये जाते हैं। लाडू, पताशा, घेवर आदि पकवानों के रूप में अलंकरण, चीलगाड़ी (हवाईजहाज) रेलगाड़ी, मोटरकार आदि यांत्रिक वाहनों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। उपरोक्त विभिन्न विषय जीवन के उल्लास एवं आनन्द के क्षणों में सहायक हुए है। राजस्थान की अनेक गांवो की चितेरी महिलाओं के द्वारा बनाये गये मांडणों में विषय की नित–नवीनता भी मिलती है। जिससे न केवल स्वच्छता एवं सौन्दर्यात्मकता का विकास हुआ वरन् नव–प्रवर्तन भी विशेष रूप से हुआ। जी.सी. पाण्डेय के अनुसार **"प्रत्येक जीवित समाज बाह्य एवं भीतर से हमेशा आन्दोलित होता है। हमेशा कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहते हैं। इसलिए यह परम्परा अपने भीतर सामाजिक रूपान्तरण का सारत्सार समाहित किये हुए है।"**[14] उपरोक्त भाव की पुष्टि अतिजीविता लहसोड़ा व कुस्तला गांव की ग्रामीण समाज की महिलाओं में भी देखने को मिलती है। कला में निखार बारहमासी स्वच्छन्दता, सृजनात्मक प्रवृति का विकास, नीरसता में कमी, लयबद्ध घनिष्ठता, कुंठाओं–दमित भावनाओं एवं विक्षोभों का विरेचन तथा जीवन्त गत्यात्मकता के सामंजस्य से उच्च भावनाओं का विकास भी देखने को मिलता है।

चितेरी महिलाओं ने आरमिक अवस्था में खालीपन को सकारात्मक व्यवस्था (नये माध्यम, नई विधि, नई शैली, नई भाषा (दृश्य रूप) व लोकाचार आदि) के द्वारा कार्य में संरचनात्मक परिवर्तन व संशोधन किया। **डेनियल लर्नर** ने भी इसी भाव की पुष्टि की है उनके अनुसार **"स्वच्छ एवं कलात्मक जीवन शैली समाज में परिवर्तन की दिशा की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा प्रदान करती है।"**[15]

लोक की जनरंजनी ऊर्जा को अभिव्यक्त करने में महिलाओं की विशेष भूमिका मानी जाती है। लोक गीत, लोक कला, लोक नृत्य, लोक परम्पराएं, लोक आस्थाएं तथा लोक पर्वोत्सव इत्यादि सभी पर महिलाएं अपना कुछ न कुछ नया ताना–बाना बुनकर उल्लास के साथ अभिव्यक्त करती हैं। निरन्तर इस क्रिया के चलते सापेक्ष एवं निरपेक्ष सभी अनुभव विभिन्न रूपों के माध्यम से चिरस्थायी रूप लेते जाते है। सरल कार्य विधि एवं आसानी से रंगों की उपलब्धता ने भी रचनात्मक माध्यम मांडणा के विकास को विस्तार दिया। प्रारम्भ से ही चितेरी महिला कलात्मक जीवन शैली के प्रवाह को अद्भुत साहस क्षमता के विभिन्न नित–नवीन माध्यमों से

अभिव्यक्त करती रहीं। कला के समाजशास्त्र की स्वीकृत नयी अवधारणा को मार्शल मैकलुहन ने व्यक्त करते हुए कहा कि **''माध्यम ही संदेश है।''**[16] इस दृष्टि से कला का महत्त्व अपने स्वभाव, संदेश और व्याकरण नियमानुशासन से ही फलित नहीं होता। वरन् कला रचना और कला प्रस्तुति के साथ ही कलास्वाद के ग्रहण का माध्यम क्या है, कब तक कारगार है और कब बदल जाता है, वह इस गतिशील माध्यम की सीमाओं और सम्भावनाओं का प्रतिफलन है। चूंकि जीवंतता के उपलब्ध आधार विभिन्न उपादान, उपकरण, और उपस्कर से जुड़ता है।

राजस्थान में सवाई माधोपुर गांव की गुड़ासी गांव की महिला चितेरियों ने अपने सजृनात्मक सामर्थ्य से न केवल विविध आयामों एवं स्वरूपों को उजागर किया वरन् सांस्कृतिक स्वर को अपने उत्कृष्ट रूप से समग्रता के साथ अभिजीवित रखा। जहां एक ओर अपनी रचनात्मकता के जरिए साधारण को भी आनन्द दिया तो दूसरी ओर स्मृतियों को अक्षुण्ण बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। युग–युग की सार स्मृतियों को संजोये रखने में सामूहिक श्रम से फलीभूत साधना ही हमारी सांस्कृतिक विरासत है जिसमें सौन्दर्य बोध का सार व्याप्त है। इतिहासकार **जी.सी. पाण्डेय** के अनुसार **''सृजनात्मकता में वास्तविकता का सार अपनी समस्त सम्भावनाओं के साथ मौजूद रहता है।''**[17] सृजन की समस्त सम्भावनाओं को आधार देती लहसोड़ा की भूमि एवं भिति आज भी अपनी निरन्तर गाथा गा रही है। भूमि एवं भित्ति पर बने माण्डने चितेरियों की स्वयं की तुष्टि–पुष्टि के लिए ही नही वरन् सांस्कृतिक सम्पदा, युग–साक्ष्यों की परम्परा तथा जीवन में परखे गये मूल्य एवं विश्वासों के धरातल पर रूपान्तरण को भी प्रतिष्ठित करते हैं। इस सौन्दर्य बोध के सहारे ये चितेरियाँ अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व को जीवित बनाये रखती हैं।

यहाँ की **जैव विविधता** ने समृद्ध परम्पराओं को पीढ़ी दर पीढ़ी संजोकर रखा तथा मानव चेतना की दीर्घकालीन परम्परा को जीवन की दैनिक क्रियाओं के विषयों का विस्तार भी इन मांडणों में चित्रित किया है।

फलौदी एवं विशेष रूप से सवाई माधोपुर के कुस्तला, गुड़ासी, लहसोड़ा आदि गांवों की चितेरी महिलाओं की जीवंत मानसिकता गुणात्मक रूप के साथ क्रियान्विति हुई। यही उसका व्यक्तित्व है तथा सृजनात्मक धरातल का सौन्दर्यबोध ही, उसका कृतित्त्व है। जिसके अनेक लोक रचनात्मक व्यवहार के आधार पर प्रचलित धारणाओं दोहो एवं कहावतों में परिलक्षित है। जो लोक कला के प्रवाहमान रचनात्मक व्यवहार को ऐतिहासिक तथ्यों के रूप में समेटे हुए है। विक्रमादित्य एवं स्याबादशाह (अकबर) का आधार स्वयं एक ऐतिहासिक तथ्य को स्पष्ट करता है। जो निरन्तर प्रचलित धारणाओं की पुष्टि को आधार देता हैं। ऐसी अनेक लोक में प्रचलित धारणाएँ एवं कहावते न केवल इतिहास का बोध कराती है वरन् आधुनिक युग के कलाकारों को भी प्रेरित करती हैं। सरल एवं ज्यामितीय आकारों की संरचना आधुनिक कलाकारों के लिए एक प्रकार की कायजनिक ऊर्जा के समान हैं जो न केवल एक काल के लिए वरन् दीर्घ कालिक हैं। जिसका प्रभाव आज हैं और आगे भी रहेगा। श्री अरविन्द कला के सौन्दर्य बोध को मानव के सभी–स्तरों पर आवश्यक मानते हैं। उनके मतानुसार ''समग्र और सार्वभौम सौन्दर्यबोध अपने सम्पूर्ण जीवन को पूरा–पूरा सुन्दर बनाना, यह एक सम्पूर्ण व्यक्ति और आदर्श समाज का आवश्यक चरित्र होना ही चाहिए।'' चूंकि सौन्दर्यबोध से न केवल रचित आधार एवं वातावरण ही सुन्दर बनता है वरन् पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में भी सहायक है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्री बद्रीनारायण एवं मिश्र, ''साहित्य और सामाजिक परिवर्तन'', नई दिल्ली, 1997, पृ. 96
2. Charles Holmes , " A Grammer of the Arts" , Londan , 1958, Page No. 5-6
3. J.L. Jarrett ," The Quest of Beauty , " London ,1967, Page No. 12
4. वाचस्पति गैरोला, ''भारतीय चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास'', इलाहाबाद, 1963, पृ. 250–251.
5. मर्टन एण्ड न्यूमियर, 'लीजर एण्ड रिक्रिएशन', सैन फ्रॉसिको, 1972, पृ. 108

6. वास्ट एण्ड विजन, शोध संकलन प्रवेशांक, अंक 1, 2003 (लेख – श्रीमती किरन सरना, 'प्राथमिक शिक्षा में कला विषय की महत्ता', पृ. 78)

7. 'By tradition is meant the sum of all the ideas, habits and customs, that belongs to people and are transmited from generation to generation.' - (Ginsberg, M., "The Psychology of Society" Page No. 104.)

8. विस्तृत आधार के लिए देखिए लेख – डॉ. पुष्पा दुल्लर, ''मीणा जनजाति की रचनात्मकता के संदर्भ में'', पृ. 150 (डॉ. राम पाण्डे – ट्राइब्स एण्ड मार्जिनलाईज्ड कम्यूनिटिज्, जयपुर, 2008) पूर्वोक्त, पृ. 151

9. आर.आर. टामलिनसन, पिक्चर एण्ड पैटर्न मेकिंग, स्टूडियो, पब्लिकेशन, लन्दन, 1947, पृ. 71

10. रोजर फ्राई, 'विजन एण्ड डिजाइन', पेलिकन बुक, लन्दन 1958, पृ. 17

11. विश्वभारती पत्रिका – सर्वप्रथम अंक, विश्वभारती ग्रन्थालय, कलकत्ता, पृ. 26

12. डॉ् पुष्पा दुल्लर, – मीणा जनजाति की रचनात्मकता के संदर्भ में पृ. 152 से 154 (पूर्वोक्त)

13. The nature and imagination in the context of aesthetic creativity and soical transformation G.C. Pandey (Social Transfer Motion and Creative imagination: Sudhir Chandra, Page No. 9, 1984.)

14. वास्ट एण्ड विजन, ''शोध संकलन प्रवेशांक', अंक–1, 2003, (लेख–डॉ. पुष्पा दुल्लर, ''राजस्थान की मीणा जनजाति में कला द्वारा सामाजिक परिवर्तन'', पृ. 56)

15. मार्शल मैकलुहन, 'मीडियम इज द मैसेज', संकलित 'मीडियाज मूवमेन्ट' ईस्ट वेस्ट बुक्स, सैन फ्रांसिस्को, 1972, पृ. 93

16. जी.सी. पाण्डेय, ''सोशल ट्रान्सफोरमेशन एण्ड क्रियेटिव इमेजिनेशन' सम्पादक – सुधीर चन्द्रा, 1984, पृ 9

❖◆❖